शकुन्तला

शकुन्तला

[महाकवि कालिदास के शकुन्तला नाटक की सरल कथा]

सन्तराम वत्स्य

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

प्रकाशक
कार्यालय : नेशनल पब्लिशिंग हाउस
'चन्द्रलोक' जवाहरनगर, दिल्ली-७
बिक्रीकेन्द्र : नई सड़क, दिल्ली

मूल्य
बारह आने

मुद्रक
शाहदरा प्रिंटिंग प्रेस
के-१८ नवीन शाहदरा दिल्ली-३२

शकुन्तला

•

पुरुवंशी राजा दुष्यन्त एक बार शिकार खेलने निकले। एक हिरन का पीछा वे करने लगे। सारथी घोड़े को तेजी से दौड़ा रहा था। हिरन मारे डर के मुड़-मुड़कर पीछे देखता और हवा से बातें करता तेजी से भागा जा रहा था। जब राजा ने देखा कि शिकार हाथ से निकला जा रहा है तो धनुष पर बाण चढ़ाया और जोर से खींचकर वे निशाना साधने लगे। तभी सामने से दो तपस्वी ऊँचे स्वर में पुकार उठे—ठहरिये महाराज! महाराज ठहरिये!! इस हिरन पर बाण मत चलाइए। आपके ये अस्त्र-शस्त्र तो दुःखी जीवों की रक्षा के लिए हैं। निरपराध जीवों को मारने केलिए नहीं।

राजा ने धनुष-बाण को नीचेकर विनय से हाथ जोड़ तपस्वियों को नमस्कार किया।

तपस्वियों ने बताया—यहाँ पास ही कण्व ऋषि का आश्रम है। अगर आपके किसी कार्य में बाधा न हो तो आश्रम में चलिए। आपका आतिथ्य करके आश्रमवासी अपने को धन्य समझेंगे।

राजा ने पूछा—कण्व ऋषि आश्रम में ही हैं?

तपस्वी—नहीं महाराज, वे तो इस समय तीर्थ-यात्रा पर हैं। पर उनकी पुत्री शकुन्तला मौजूद है। आप चलिए, हम भी समिधाएँ चुनकर जल्दी ही लौट आएँगे।

राजा ने कहा—ठीक है। आप अपना काम कीजिये। मैं मुनि-कन्या के ही दर्शन कर आता हूँ। वे ही महर्षि के

वापस आने पर उन्हें मेरा नमस्कार निवेदन कर देंगी।

राजा अकेले ही आश्रम की ओर चले। आश्रम में पहुँचते ही उनकी दाईं भुजा फड़कने लगी। उन्होंने मन में सोचा, कोई शुभ कार्य होने वाला है।

आश्रम में तपस्वी कन्याएँ घड़े भर-भरकर क्यारियाँ सींच रही थीं। ये थीं शकुन्तला और उसकी सखियाँ—अनुसूया और प्रियंवदा। राजा एक वृक्ष की छाया में खड़े हो गए।

◇ ◇ ◇

मुनि विश्वामित्र की तपस्या से देवराज इन्द्र घबरा उठे। उन्हें डर लगने लगा कि कहीं विश्वामित्र उनकी गद्दी ही न छीन लें। तो फिर विश्वामित्र की तपस्या कैसे भंग की जाए! उन्होंने इसका उपाय सोच निकाला।

स्वर्गलोक की अप्सराओं में सबसे रूपवती मेनका को उन्होंने समझा-बुझाकर विश्वामित्र के पास भेजा। बस, फिर क्या था। उस मनमोहिनी का जादू काम कर गया। देवराज इन्द्र जो चाहते थे, वह उन्होंने मेनका द्वारा कर दिखाया। मुनि विश्वामित्र अपने को काबू में न रख सके। वहीं मेनका ने एक पुत्री को जन्म दिया और उसे वहीं छोड़-कर वापस इन्द्र के पास चली गई।

अब वह अनाथ बच्ची जंगल में पड़ी जार-बेजार होकर चीख रही थी। मुनी कण्व अपने शिष्यों के साथ उसी रास्ते मालिनी नदी की ओर जा रहे थे। उस शिशु के रोने की आवाज ने उन्हें अपनी ओर खींच लिया। उस बच्ची को उठाकर वे अपने आश्रम में ले आए। उसके पालन-पोषण के लिए उसे आश्रम की तपस्विनी गौतमी के हवाले कर दिया। कण्व स्वयं पिता की तरह उसे स्नेह करने लगे। मुनि ने उसका नाम शकुन्तला रखा।

शकुन्तला आश्रमवासियों के लाड-प्यार में पलने लगी। उस बच्ची की जादू भरी मुस्कानों और किलकारियों से आश्रम गूंजने लगा। वह ज्यों-ज्यों बड़ी होती गई, उसके प्रति मुनि कण्व की ममता भी बढ़ती गई।

शकुन्तला घड़े भर-भर आश्रम के पौधों और बेलों को सींचती। हिरनों के बच्चों को हरी-हरी दूब खिलाती। तोतों को पढ़ाती और मोरों को नचाती।

अब मुनि कण्व के मन पर शकुन्तला के लिए योग्य वर खोजने की चिंता सवार हुई। जब कभी शकुन्तला की सखियाँ—अनुसूया और प्रियंवदा—उसके साथ उसके विवाह

की बात छेड़तीं तो शकुन्तला लजाकर मुस्करा देती और सिर नीचा कर लेती।

राजा की नजर शकुन्तला पर जा पड़ी। उसके भोलेपन और असाधारण रूप को देखकर वे एक-टक देखते रह गए। वे मन में तरह-तरह की बातें सोचने लगे।

उधर से एकाएक शकुन्तला के चिल्लाने की आवाज आई। एक भौंरा फूल से उड़कर शकुन्तला के मुंह के आस-पास मंडरा रहा था। शकुन्तला ने घबराकर सखियों को पुकारा—अरी सखियो! जरा इस भौंरे को तो हटाओ। मैं तो हटाती-हटाती हार गई।

वे दोनों मुस्कराकर बोलीं—यह हमारे बस की बात नहीं है। महाराज दुष्यन्त को पुकारो। तपस्वियों की रक्षा की जिम्मेदारी तो उन्हीं पर है।

महाराज दुष्यन्त खड़े यह सब कुछ देख-सुन रहे थे। उन्हें अपने को प्रकट करने का ठीक अवसर मिल गया।

वे पास जाकर बोले—यह कौन ढीठ है जो दुष्यन्त के रहते तपस्वी कन्या पर अत्याचार करने का साहस कर रहा है?

राजा को एकाएक इस प्रकार सामने देख वे तनिक घबरा गईं और चुपचाप एक ओर जा खड़ी हुईं।

कुछ देर बाद इस चुप्पी को तोड़ते हुए प्रियंवदा ने कहा—महाराज, कुछ विशेष बात नहीं है। हमारी सखी शकुन्तला एक भौंरे से डर गई थी।

फिर वह शकुन्तला से बोली—शकुन्तले! महाराज के स्वागत-सत्कार के लिए कुटिया से मधुपर्क आदि तो ले आओ।

महाराज दुष्यन्त तो पहले ही शकुन्तला के रूप-यौवन पर मोहित हो चले थे। अब शकुन्तला ने जो उन्हें देखा तो उसके मन का भी वही हाल हो चला।

आदर-सत्कार के बाद बातों ही बातों में दोनों सखियों ने महाराजा का परिचय पा लिया और महाराजा को शकुन्तला का परिचय दे दिया। दुष्यन्त को जब यह मालूम हुआ कि शकुन्तला ब्राह्मण की कन्या नहीं, राजर्षि विश्वामित्र के संयोग से मेनका नामक अप्सरा से उत्पन्न हुई है तो वे मन ही मन बहुत खुशी हुए। क्योंकि उससे वे विवाह कर सकते थे।

बातों ही बातों में जब प्रियंवदा ने महाराजा को बताया कि इसके पिता महर्षि कण्व इसके लिए योग्य वर की तलाश में हैं तो शकुन्तला लजाकर वहाँ से चलने लगी। पर प्रियंवदा ने उसे जाने नहीं दिया। हाथ पकड़कर बोली—पहले अपने हिस्से का काम तो पूरा कर लो। तब जाने दूंगी। अभी तो तुम्हें दो पौधे और सींचने हैं।

शकुन्तला कुछ तो थकी हुई थी और कुछ लाज के मारे गड़ी-सी जा रही थी। राजा ने जब उसकी यह दशा देखी तो कहने लगे—यह बहुत थकी-सी जान पड़ती हैं। इनके हिस्से का काम मैं पूरा किए देता हूँ।

इतने में कुछ शोर-गुल सुनाई दिया। महाराज की सेना का एक हाथी भाग खड़ा हुआ था और कुछ सैनिक उसे इधर-उधर खोजते और लोगों को सावधान करते जा रहे थे।

इस हो-हल्ले को सुनकर वे तीनों सखियाँ आश्रम को

लौट चलीं और महाराजा दुष्यन्त अपनी सेना की ओर।

राजा दुष्यन्त कई दिनों तक शिकार का आनन्द लेते रहे। पर उनके मित्र माधव्य को यह वनवास जरा नहीं भाया। भला महलों जैसा आराम यहाँ कहाँ! वह महाराज के आगे गिड़गिड़ाया—महाराज, मैं तो आपके इस शिकार-प्रेम से बहुत ही परेशान हूँ। न दिन को चैन, न रात को नींद। आठों पहर हो-हल्ला। यह भागा, वह भागा, दौड़ो, पकड़ो, मारो, यह सुनते-सुनते मेरे तो कान पक गए। दौड़-भाग के कारण देह का एक-एक जोड़ हिलने लगा है। कुछ दिन के लिए तो इस झमेले को बंद कीजिए।

महाराज का मन भी शिकार से ऊब चला था। पर शकुन्तला के प्रेम-बंधन के कारण वे राजधानी भी नहीं लौटना चाहते थे। उन्होंने सेनापति को बुलाकर शिकार बंद करने की आज्ञा दी। फिर दोनों मित्रों में शकुन्तला के सम्बन्ध में बातें होने लगीं। बात-चीत चल ही रही थी कि दो मुनि-कुमार आ पहुँचे। उन्होंने बताया कि आश्रम में कुछ राक्षस उत्पात मचाने लगे हैं, इसलिए उनके भगाने का कुछ उपाय किया जाए। महाराज तो आश्रम में जाने का कोई बहाना ढूँढ़ ही रहे थे; इसलिए सुनते ही झट तैयार हो गए।

दुष्यन्त आश्रम में पहुँचे तो राक्षस उनके डर से भाग खड़े हुए। अब फिर उनके मन में शकुन्तला का प्रेम जगा। उन्होंने राजधानी लौटने का विचार फिर कुछ देर के लिए छोड़ दिया।

एक दिन दोपहर में कड़ाके की धूप पड़ रही थी।

महाराज कुछ उदास और गर्मी से व्याकुल विश्राम के लिए कोई स्थान खोज रहे थे कि उनकी दृष्टि सामने के एक कुंज पर पड़ी। वे सुस्ताने के लिए उसी में चले गए। उन्हें पास ही कुछ फुसफुसाहट-सी सुनाई दी। वे दबे पाँव वहां गए और कान लगाकर सुनने लगे। शकुन्तला और उसकी सहेलियाँ आपस में बातें कर रही थीं। महाराज ने भीतर की ओर झाँककर देखा। शकुन्तला फूलों की सेज पर लेटी हुई थी और दोनों सखियाँ ताड़ के पत्ते से पंखा झल रही थीं। अनुसूया बोली—शकुन्तले, अपने मन की बात क्यों नहीं बताती हो, तुम जिसके कारण व्याकुल हो, उसका नाम तो बताओ। शकुन्तला संकोच के कारण पहले तो कुछ टाल-मटोल करती रही पर जब वे बहुत हठ करने लगीं तो शकुन्तला ने दबे स्वर में कहा—सब कुछ तो तुम्हें मालूम है। फिर क्यों मुझसे बार-बार पूछती हो। जब से मैंने महाराज को देखा है, मेरा मन वश में नहीं रहता।

राजा ने जब यह बात-चीत सुनी तो उनकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। यही वे सुनाना चहते थे।

शकुन्तला ने फिर कहा—अगर मेरे लिए कुछ करना ही चाहती हो तो ऐसा उपाय करो कि मैं उनको पा सकूं। उनकी बन सकूं। नहीं तो मैं उनके विरह में घुल-घुलकर मर जाऊँगी।

प्रियंवदा बोली—यह कोई कठिन काम नहीं है। महाराज दुष्यन्त भी तो तुम्हारे लिए उतने ही व्याकुल हैं, जितनी तुम उनके लिए। अब तुम एक काम करो—महाराज के नाम एक प्रेम-पत्र लिखो। उस पत्र को उन तक पहुँचाने

की जिम्मेदारी मेरी रही।

शकुन्तला प्रेम-पत्र लिखने के लिए तैयार हो गई। उसने यह भी सोच-विचार लिया कि क्या लिखा जाए। पर यहाँ तो न कलम थी न स्याही, न कागज ; लिखे तो कैसे ? इसका हल भी प्रियंवदा ने सुझा दिया। कहने लगी—कमलिनी के हरे पत्ते पर नख से लिख डालो। शकुन्तला को बात जँच गई। उसने पत्र लिखा और पढ़कर सखियों को सुनाने लगी।

अब महाराज ने अपने आपको छिपाना ठीक नहीं समझा। वे उनके पास चले गए। मन के मीत को सामने देख शकुन्तला स्वागत के लिए उठने लगी पर राजा ने रोक दिया। अनुसूया ने शकुन्तला के पास राजा को बैठने का इशारा किया। महाराज वहीं बैठ गए।

प्रियंवदा ने बात को आगे बढ़ाते हुए कहा—महाराज, आश्रमवासियों की सभी प्रकार की पीड़ा को दूर करना आपका धर्म है न ?

हाँ है तो। महाराज ने उत्तर दिया।

तो हमारी इस सखी का जीवन अब आप ही के हाथ में है। देखिए न आपके वियोग के दुःख से कैसी पीली पड़ गई है। प्रियंवदा ने कहा।

शकुन्तला बात काटकर बोली—प्रियंवदे, महाराज के रनिवास में तो एक से एक बढ़कर रानियाँ होंगी; फिर वे मेरी परवाह क्यों करने लगे।

बात तो ठीक कही तुमने। शकुन्तला की हाँ में हाँ मिलाते हुए प्रियंवदा बोली—यह तो हमने भी सुना है कि राजाओं के अनेक रानियाँ होती हैं। कहीं ऐसा न हो कि हमारी सखी···

महाराज ने कहा—आप इस बात की चिंता न करें। तुम्हारी सखी उन सब से अधिक आदर और मान पाएगी।

राजा का ऐसा निश्चय सुना तो दोनों शकुन्तला की ओर से निश्चिन्त हो गईं। अब वे दोनों वहाँ से खिसकने का कोई बहाना ढूंढ़ने लगीं।

'अरी प्रियंवदे, देखो तो यह हिरन का बच्चा अपनी माँ को खोज रहा है। मैं इसे इसकी माँ से मिलाती हूँ।' कहकर अनुसूया चली गई। 'तू इसे अकेली नहीं ले जा सकेगी। बड़ा चंचल है।' यह कहती हुई उसके पीछे-पीछे प्रियंवदा भी चली गई।

अरी मुझे अकेली छोड़कर कहाँ जाती हो ? शकुन्तला

बोली ।

प्रियंवदा ने जाते-जाते कहा—तुम अकेली कहाँ हो ? महाराज जो तुम्हारे पास हैं ।

दोनों सखियों के जाने के बाद दुष्यन्त और शकुन्तला में बहुत-सी प्रेम की बातें हुईं और वे दोनों प्रेम के सूत्र में बन्ध गए । उनका प्रेम-विवाह हो गया ।

कुछ समय शकुन्तला के साथ बिता, दुष्यन्त उसे अपने प्रेम की निशानी के तौर पर अपनी सोने की अंगूठी दे हस्तिनापुर लौट आए । साथ ही यह भी कह आए कि बहुत जल्द उसे लेने के लिए राजमहल से आदमी आएँगे ।

शकुन्तला अपने प्रियतम के वियोग में खोई-खोई रहती । एक दिन वह आश्रम में अकेली बैठी थी । उसी समय दुर्वासा ऋषि वहाँ पधारे । ऋषि कण्व आश्रम में थे नहीं । अनुसूया और प्रियंवदा आश्रम के पास ही फूल चुन रही थीं । दुष्यन्त के ध्यान में मग्न शकुन्तला को दुर्वासा ऋषि के आने का पता तक न चला । अतः वह अतिथि-सत्कार के लिए न उठ सकी । इससे दुर्वासा ऋषि को क्रोध आ गया और उन्होंने शकुन्तला को शाप दे दिया—अरी छोकरी ! जिसके ध्यान में खोई हुई तू मुझ तपस्वी के आने पर भी न चेती, वही तेरा प्रेमी याद दिलाने पर भी ठीक उसी प्रकार तुझे याद न करेगा, जिस प्रकार पागल आदमी अपनी पिछली बात को याद नहीं करता ।

शकुन्तला इस प्रकार बेखबर थी कि वह शाप के शब्द भी न सुन सकी । लेकिन फूल चुनती हुई सखियों ने सुन लिया । अनुसूया दौड़ी हुई आई और ऋषि के पैरों पर गिर

पड़ी। शकुन्तला के लिए उसने ऋषि की बड़ी आर्जू-मिन्नत की। दुर्वासा का क्रोध कुछ शान्त हुआ। फिर भी उन्होंने कहा—मैंने जो वचन एक बार मुंह से निकाल दिया, वह होकर ही रहेगा, परन्तु किसी निशानी के दिखाने पर दुष्यन्त इसे अवश्य पहचान लेगा। दुष्यन्त की दी हुई अंगूठी शकुन्तला के पास थी ही। इसलिए सखियाँ निश्चिन्त हो गईं। लेकिन उन्होंने शकुन्तला से शाप की बात नहीं बताई।

कण्व ऋषि तीर्थ-यात्रा से वापस आ गए। उन्हें दुष्यन्त और शकुंतला के प्रेम-विवाह और शकुंतला के गर्भवती होने की बात मालूम हो गई। उन्होंने शकुन्तला के भय और संकोच को दूर करने के लिए कहा—बिटिया! तूने दुष्यन्त जैसे सुयोग्य पति का वरण किया, यह बड़े सौभाग्य की बात है। मैं आज ही तुझे दो शिष्यों के साथ तेरे पति के पास भेजने का प्रबन्ध करता हूँ।

इतना कह कण्व ने अपनी धर्म-बहिन गौतमी से कहा—शार्ङ्गरव और शारद्वत से कहो कि शकुन्तला को हस्तिनापुर पहुँचा आने के लिए तैयार हो जाएँ।

अब आश्रम में शकुन्तला की विदाई की तैयारी होने लगी। अनुसूया और प्रियंवदा शकुन्तल का साज-शृंगार करने लगीं।

और तब आश्रम के वृक्षों में से किसीने चन्द्रमा के रंग के-से पीले, सफेद सुन्दर वस्त्र दिये। किसी वृक्ष ने पैरों में लगाने के लिए सुन्दर 'महावर' दिया। शकुन्तला इन गहनों और वस्त्रों से सजधजकर माता गौतमी के आदेश पर गुरुजनों को प्रणाम करने लगी। 'आज शकुतन्ला चली

जायगी' यह सोचकर विरक्त वनवासी होते हुए भी ऋिष कण्व अत्यन्त व्याकुल हो चले। गला रुँध गया। आँखों में आँसू भर आये। शकुन्तला के प्रणाम करने पर उन्होंने उसे चक्रवर्ती पुत्र की माँ होने का आशीर्वाद दिया। और फिर तपोवन के वृक्षों को सम्बोधित करते हुए कहा—आश्रम के वृक्षो, आज शकुन्तला अपने पति के घर जा रही है। इसे आज्ञा दो ! यह तुम्हारी शकुन्तला है जो बिना तुम सबों को सींचे कभी पानी तक न पीती थी। जो साज-सज्जा की शौकीन होकर भी स्नेहवश तुम्हारे कोमल पत्तों को तोड़ती न थी। जो तुम्हारी डालों में फूल लगने पर खुशी में स्वयं उत्सव मनाती थी। और इसी समय मानो आश्रम के सभी वृक्षों की ओर से अनुमति देते हुए कोयल भी कूकने लगी।

विदा के समय का दृश्य बड़ा दर्द-भरा था। हिरनियाँ चरना छोड़कर व्यथा-भरी आँखों से विदा होती शकुन्तला को देखने लगीं। और एक हिरन का छौना शकुन्तला की साड़ी में बार-बार लिपटकर मानो उसका रास्ता रोकने लगा। शकुन्तला ने देखा, यह हिरन का छौना तो उसका अपना धर्म-पुत्र था। जन्म देते ही उस छौने की माँ परलोक सिधार गई थी। तब से शकुन्तला ने ही उस बच्चे को माँ के प्यार से पाला था। अपने इस प्यार के पुतले को इस प्रकार अपना रास्ता रोकते देख वह अधीर हो उठी। उस मृग-शिशु को गोद में बैठाकर उससे गद्‌गद् स्वर में बोली—बेटा! तुझे छोड़कर चल देने वाली मुझ निठुर को तू क्यों इतना चाहता है? जा बेटा, जा! तेरी माँ के मर जाने पर जिस तरह मैंने तुझे पाला-पोसा, उसी तरह मेरे न रहने पर मेरे पिता जी तुझे पालेंगे! प्यार करेंगे! इतना कह-कर उस मृग-शिशु को पिता कण्व के हाथ सौंप वह रोती हुई चल पड़ी।

ऋषि कण्व ने शकुन्तला से अन्तिम विदा लेते हुए उसे उपदेश दिया—बिटिया! वनवासी होते हुए भी हम लोक-व्यवहार जानते हैं। अपने पति के घर में रहते हुए अपने गुरुजनों की सेवा करना; सौतों को प्रिय सहेलियों की तरह प्यार करना; पति यदि कभी अनादर भी करे तो नाराज न होना; नौकर-चाकरों से दया का बर्ताव करना; अपने भोग-वैभव पर अहंकार कभी न करना।

और फिर राजा दुष्यन्त को संदेश देते हुए शार्ङ्गरव से बोले—बेटा! मेरी ओर से राजा को कहना, शकुन्तला

ने बन्धु-बान्धवों से बिना पूछे ही पति रूप में आपको वरण किया। सो, शकुन्तला के उस प्रेम और हमारी साधुता तथा संयम और अपने ऊँचे कुल का विचार करके इसे पत्नी रूप में ग्रहण कीजिए। इससे आगे उसका अपना भाग्य !

शकुन्तला अपनी दोनों सखियों को छोड़ना नहीं चाहती थी। कण्व ने कहा—बेटी ! इनका भी तो विवाह करना है ? तेरे साथ इनका जाना ठीक नहीं। तेरे साथ गौतमी जाएगी। आ बेटी ! अन्तिम बार मुझे छाती से लगा और अपनी सखियों को भी।

शकुन्तला ने पिता को अपनी छाती से लगाया। उनके पैरों पर गिरकर प्रणाम किया। फिर अपनी दोनों सखियों को एक साथ गले से लगाकर रोने लगी। कुछ देर बाद गौतमी, शार्ङ्गरव और शारद्वत के साथ शकुन्तला रोते-रोते चल पड़ी। चलते समय दोनों सखियों ने उसे चुपके से बता दिया—सखि ! यदि राजा तुम्हें पहचानने में भूल करें तो तुम वह अंगूठी उन्हें दिखा देना, जिसे विदा के समय उन्होंने तुझे दिया था।

शकुन्तला अपने साथियों के साथ हस्तिनापुर पहुँची। राजा को सूचना दी गई। राजा ने इन चारों अतिथियों के सत्कार का भार राज-पुरोहित सोमरात को सौंपकर उन्हें दूसरे दिन राज-सभा में सम्मानपूर्वक ले आने का आदेश दिया।

दूसरे दिन राजपुरोहित सोमरात के साथ चारों जने राज-सभा में उपस्थित हुए। कुशल-प्रश्न के बाद शार्ङ्गरव ने ऋषि कण्व का संदेशा कहा—महाराज ! ऋषि कण्व ने आप से निवेदन किया है कि आपने परस्पर की इच्छा से

मेरी पुत्री से प्रेम-विवाह किया, उसे मैंने सहर्ष मान लिया है। मेरी पुत्री आपके गर्भ को धारण किए है। इसे धर्म-पत्नी के रूप में स्वीकार करें।

संदेशा सुनकर राजा चौंक उठे। दुर्वासा के शाप के कारण उनकी स्मृति ढँक गई थी। वे आश्चर्य-भरे स्वर में बोले—ऐं! यह क्या कह रहे हैं आप! मैंने कब विवाह किया इनसे?

शकुन्तला को काटो तो खून नहीं और शार्ङ्गरव एका-एक क्रुद्ध हो राजा को धिक्कारते हुए बोला—राजा! तुम अपने ही किए कार्य से इन्कार करते हो! ऐसा अधर्म! हमारा ऐसा अपमान! तुम धन-वैभव से उन्मत्त हो गए हो। इसी से ऐसा कहते हो।

राजा क्रुद्ध हो झेंपकर बोले—यह स्पष्ट रूप से मेरे चरित्र पर आक्षेप है! कलंक है!

और तब गौतमी शकुन्तला का घूंघट हटाते हुए उससे बोली—बिटिया! शरम मत कर। तेरे मुख को देखकर तेरे पति जल्द पहचान जायेंगे!

दुष्यन्त उस रूप को देखकर आवाक् रह गए। चुपचाप देखते ही रहे। और तब शार्ङ्गरव ने पुनः कड़े शब्दों में राजा को सम्बोधित किया—चुपचाप क्या देख रहे हो? बोलते क्यों नहीं!

और राजा ने जवाब दिया—तपस्वी! याद करने पर भी याद नहीं आ रहा कि मैंने इनसे विवाह किया। फिर मैं दूसरे के गर्भवाली स्त्री को कैसे स्वीकार करूँ?"

शकुन्तला की सारी आशाओं पर जैसे पानी फिर गया।

उसका हृदय बैठ गया। और शार्ङ्गरव पुनः क्रोध भरे स्वर में बोला—राजा ! तुमने चोरी से इस कन्या से विवाह कर लिया। लेकिन महर्षि कण्वने तुम चोर को ही अपना दामाद स्वीकार कर लिया ! अब महर्षि का इस प्रकार अपमान तो न करो।

और तब शारद्वत भी बोला—शार्ङ्गरव ! तुम चुप करो। हमें जो कहना था, कह दिया। अब शकुन्तला स्वयं विश्वास दिलाये।

अब शकुन्तला दुःख भरे स्वर में बोली--महाराज ! आपने मुझ भोली-भाली को तरह-तरह की आशाएँ देकर, प्यार भरे वचनों से फुसलाकर विवाह के लिए राजी किया। अब आप इस प्रकार अस्वीकार कर रहे हैं !

राजा झट अपने कान मूँदकर बोला—छिः ! ऐसा न कहो ! ऐसा कहकर मेरे कुल को बदनाम करना चाहती हो ? मुझे नीचे गिराना चाहती हो ?

शकुन्तला अब अपनी सखियों की सलाह यादकर अपनी अंगुली से अंगूठी निकालने लगी तो अंगूठी का कहीं पता न था ! शकुन्तला व्याकुल होकर बोली—हाय रे दैव ! तूने मुझसे अंगूठी भी छीन ली ! और तब उसने दूसरे प्रकार से राजा को विश्वास दिलाना चाहा। लेकिन सब व्यर्थ ! उल्टे राजा ने उसपर धूर्ता होने का आरोप लगाया।

तब शकुन्तला अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोली—अनार्य ! धूर्त ! पाखंडी !! क्या तू अपने जैसा सबको समझता है !

राजा शकुन्तला की मुख-मुद्रा से डरा भी, झेंप भी गया लेकिन फिर भी उसने इन्कार कर दिया। शकुन्तला ने और भी

कटु वचन कहे। और तब गौतमी ने शकुन्तला से कहा—बेटी! पुरु-वंश के धोखे में आकर तू इस ठग के हाथ में पड़ गई!

अब शकुन्तला मुंह ढँककर रोने लगी। और शार्ङ्गरव ने उसे ताना मारा—अत्यंत चंचलता का अंत में यही परिणाम होता है!

राजा ने कहा—क्यों आप लोग एक स्त्री की बात पर विश्वास करके मुझे इस प्रकार अपमानित कर रहे हैं?

और शार्ङ्गरव ने कटु व्यंग्य के साथ जवाब दिया—जो जन्मते ही छल-कपट से अनजान है, उसकी बात पर तो हम अविश्वास करें और तुम जैसे राजनीति के खिलाड़ी जिसका काम ही दूसरों को ठगना और धोखा देना है, उसकी बात पर हम विश्वास करें?

इसके बाद खूब कहा-सुनी हो लेने के बाद शार्ङ्गरव ने ने कहा—यह तुम्हारी पत्नी है। इसे चाहे छोड़ दो या ग्रहण करो। पति को अपनी स्त्री पर हर प्रकार का अधिकार है। हम अब चलते हैं। यह कहकर वह शकुन्तला को वहीं छोड़ अपने साथियों के साथ चल पड़ा।

शकुन्तला भी रोती-धोती उनके पीछे चली। लेकिन शार्ङ्गरव ने उसे फटकारा। उसे अपने पति के घर ही रहने का आदेश दिया। वे चल पड़े। अब राजपुरोहित ने राजा से कहा—महाराज! बच्चा प्रसव करने तक इस महिला को मेरे घर रहने दें। ज्योतिषियों की भविष्वाणी के अनुसार यदि इसके गर्भ से चक्रवर्ती के लक्षण से युक्त पुत्र उत्पन्न हुआ तो इसे पत्नी के रूप में ग्रहण करने में कोई पाप नहीं।

राजा राजी हो गया। लेकिन उसी क्षण पुरोहित ने एक

आश्चर्यजनक घटना की सूचना दी—महाराज ! अत्यन्त अद्भुत बात ! जब कण्व के शिष्य लौट चले और वह स्त्री छाती पीटती अपने भाग्य को रोने लगी तो उसी क्षण अप्सरातीर्थ के पास से बिजली-सी चमकती एक औरत आई, और उसे गोद में उठाकर अन्तर्धान हो गई ! सुनकर राजा भी आश्चर्य चकित रह गया !

० ० ०

एक दिन एक मछुआ शक्रावतार तीर्थ के सरोवर में मछली पकड़ने गया। एक बड़ी मछली उसके हाथ लगी। उसका पेट फाड़ा तो उसमें से वही अंगूठी निकली, जो दुष्यन्त ने शकुन्तला को दी थी। इस सरोवर में आचमन करते समय शकुन्तला की अंगुली से अंगूठी खिसककर पानी में जा पड़ी थी। मछली उसे निगल गई थी। मछुआ उस अंगूठी को कीमती समझकर सराफ की दुकान में बेचने गया। सर्राफ से मोल-तोल होने लगा। इसी बीच संयोग से राजा दुष्यन्त का कोतवाल वहां आ पहुँचा। राजा की अंगूठी पहचान उसने उस मछुए को गिरफ्तार कर लिया। अंगूठी राजा के पास पहुँचाई गई। अंगूठी देखते ही राजा की स्मृति लौट आई। राजा ने उस मछुए को पुरस्कार देकर छोड़ देने का आदेश दिया। और शकुन्तला के विरह में व्याकुल हो चला। स्वयं शकुन्तला के प्रति अपने दुर्व्यवहार को याद कर-करके पछताने लगा। शकुन्तला की आँखों के दुःख और अपमान के आँसू याद कर-करके अब स्वयं उसकी आंखों से आंसू बहने लगे। शकुन्तला के वे आँसू मानो जहरीले कांटे बनकर उसके हृदय को छेदने लगे, उसे रुलाने लगे।

इस प्रकार राजा अपने बाग में बैठा पछता ही रहा था कि उसके कानों में विदूषक माधव्य के चीखने की आवाज आ पड़ी। राजा अब सारा शोक भूलकर एकाएक क्रोध में भरकर उठ खड़ा हुआ। वह अपने मित्र माधव्य को बचाने उस ओर चल पड़ा जहाँ से वह आवाज आ रही थी। और राजा ज्योंही महल की छत पर पहुँचा कि माधव्य का गला दबाने वाली वह छिपी मूर्ति प्रकट हो पड़ी। राजा ने आश्चर्य से देखा कि वह मूर्ति स्वयं देवराज इन्द्र का सारथी मातलि था।

मातलि ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—महाराज ! मैंने देखा कि आप किसी घोर चिन्ता में मग्न हैं। आपका ध्यान इधर खींचने के ख्याल से ही मैंने आपके मित्र का गला दबाया। देवराज इन्द्र ने आपको कहा है—'कालनेमि ने इधर फिर सिर उठाया है। बिना आपकी सहायता के उसका दमन नहीं हो सकेगा।' सो, महाराज ! रथ पर सवार होइये ! देव-कार्य के लिए शीघ्र प्रस्थान कीजिये।

राजा ने निमंत्रण सहर्ष स्वीकार कर लिया। राज-काज का भार अपने मंत्री पिशुन को सौंपकर वे मातलि के साथ स्वर्ग को रवाना हो गये।

राजा दुष्यन्त ने कालनेमि का दमन किया। इन्द्र ने विजय की खुशी में दुष्यन्त का खूब सत्कार किया। मातलि के साथ रथ पर बैठ जब दुष्यन्त वापस आ रहे थे, रास्ते में हेमकूट पर्वत आया। मातलि से मालूम हुआ कि इसी पर्वत पर कश्यप ऋषि अपनी पत्नी अदिति के साथ निवास करते हैं। उनके दर्शन के निमित्त राजा वहाँ रथ से उतर गये। मातलि

राजा के आगमन की सूचना देने कश्यप के आश्रम को चला। रथ से उतरते ही राजा ने एक आश्चर्यजनक दृश्य देखा। एक मानव-शिशु सिंह-शावक को पकड़कर उसके मुँह में हाथ डालकर कह रहा था—मुँह खोल ! मैं तेरे दाँत गिनूँगा।

और आश्रम की दो तापसियाँ उसे मना कर रही थीं—दुष्ट ! आश्रम के सभी जन्तु हमारे पुत्र की तरह हैं। क्यों तू इसे दुःख दे रहा है ? इसी लिए तो तेरा नाम ऋषियों ने 'सर्वदमन' रख दिया।

फिर प्यार-भरे स्वर में एक दूसरी तापसी बोली—बेटा ! सिंह के इस बच्चे को छोड़ दे। मैं तुझे दूसरा खिलौना दूँगी।

लेकिन वह मानव-शिशु मानने को तैयार न था। तब राजा ने आगे बढ़कर उस शिशु से कहा—ऋषि-पुत्र, अपने इस प्रकार के आचरण से क्यों तुम इस आश्रम के शान्त

वातावरण को दूषित कर रहे हो ?

राजा की बात सुनकर एक तापसी बोली—महाशय, यह ऋषि-पुत्र नहीं है।

तो कौन है ? राजा ने पूछा।

यह राज-पुत्र है।

उस राजा का नाम क्या है ?

अपनी पत्नी का परित्याग करने वाले उस राजा का नाम लेकर मैं पाप-भागी नहीं बनना चाहती !

दुष्यन्त को लगा, जैसे यह आक्षेप स्वयं उन्हीं पर किया गया हो। उस लड़के को देखकर पहले ही उसके हृदय में पुत्र-स्नेह उमड़ आया था। लेकिन फिर भी संदेह था।

उस बालक की बाँह में बँधा रक्षा-कवच नीचे गिर गया था। उसे नीचे गिरा देख एक तापसी बोली—अरे ! इसका रक्षा-कवच तो नीचे गिर गया !

और राजा ने उस गिरे कवच को झट हाथ में उठाकर जवाब दिया—सिंह-शिशु से लड़ने-झगड़ने में यह कवच इसकी बाँह से गिर गया। मैं बाँधे देता हूँ।

दोनों तापसियों ने पहले ही उस कवच को छूने से राजा को मना किया था। लेकिन अब तो वे आश्चर्य-चकित रह गईं।

राज, ने उनके मना करने का कारण पूछा। जवाब में वे बोलीं—महाशय ! इस कवच का यह प्रभाव है कि बालक के माता-पिता के अतिरिक्त यदि किसी दूसरे ने इस कवच को छू दिया तो कवच सर्प बनकर उसे डँस लेता है।

अब दुष्यन्त को रंचमात्र भी संदेह नहीं रह गया।

उन्होंने उस बच्चे का हाथ पकड़ लिया। दोनों तापसियाँ आश्रम में दौड़ पड़ीं—शकुन्तला को खबर देने। और इधर वह बालक दुष्यन्त से हाथ छुड़ाते हुए बोला—मुझे छोड़ दो ! मैं अम्मा के पास जाऊँगा !

राजा ने उसका हाथ पकड़े ही प्यार-भरे स्वर में जवाब दिया—बेटा ! मेरे साथ ही अपनी अम्मा के पास चलना !

मैं तुम्हारा बेटा नहीं ! उस बालक ने तनिक क्रोध प्रकट करते जवाब दिया—मेरा बाप तो दुष्यन्त है !

दुष्यन्त और भी आनंद-विभोर हो उठे। संदेह की कोई गुन्जाइश न रही।

शकुन्तला भी खबर पाकर अपने पुत्र को देखने चल पड़ी। निकट आकर उसने पति को पहचाना और पति ने पत्नी को। दुष्यन्त शकुन्तला के पैरों पर गिरे पड़े। माफी माँगी। शकुन्तला के आग्रह पर राजा उठ खड़े हुए।

बालक ने शकुन्तला से पूछा—अम्मा यह कौन है ?

शकुन्तला ने जवाब दिया—अपने भाग्य से पूछ बेटा।

शकुन्तला ने अब दुष्यन्त से पूछा—इस दुखियारी को कैसे याद किया महाराज !

और राजा ने अपने हाथ की अँगूठी दिखाकर सारी कहानी कह सुनाई। इसके बाद आश्रम में जाकर सबने कश्यप ऋषि का दर्शन किया। उनसे आशीर्वाद लेकर राजा दुष्यन्त पुत्र और पत्नी सहित हस्तिनापुर आ पहुँचे। उसी बालक सर्वदमन का नाम आगे चलकर 'भरत' हुआ। उसी भरत के नाम पर हमारे देश का नाम 'भारत' पड़ा।

●